

नियमसार २६९ कलश। २६८ चला है।

त्यक्त्वा सङ्गं जननमरणातङ्कहेतुं समस्तं,
कृत्वा बुद्ध्या हृदयकमले पूर्णवैराग्यभावम्।
स्थित्वा शक्त्या सहजपरमानन्दनिर्व्यग्ररूपे,
क्षीणे मोहे तृणमिव सदा लोकमालोकयामः ॥२६९॥

-
१. बुद्धिपूर्वक=समझपूर्वक; विवेकपूर्वक; विचारपूर्वक।
 २. शक्ति=सामर्थ्य; बल; वीर्य; पुरुषार्थ।

श्लोकार्थः आहाहा! जन्म-मरणरूप रोग के हेतुभूत समस्त संग को छोड़कर,... आहाहा! समस्त में कोई बाकी नहीं रखा। जन्म-मरणरूप रोग के हेतुभूत... एक स्वचैतन्यमूर्ति भगवान के अतिरिक्त कोई भी परद्रव्य, समस्त संग को छोड़कर,... आहाहा! शुद्ध उपयोगरूपी आत्मा, जिसके संग से शुद्धोपयोग होता है, उस एक के अतिरिक्त दूसरे सब कोई संग करनेयोग्य नहीं हैं। आहाहा! एक से दूसरा संग करने से राग होता है। आहाहा! १००वीं गाथा में तो कहा है। इसमें १००वीं गाथा है न? आहाहा! १००वीं गाथा है? आहाहा! १००वीं गाथा है, उसका कलश है, कलश। आहाहा! १०० के बाद कला है। आहाहा! १३५ कलश है। १३५ है? १३५।

मेरे सहज सम्यग्दर्शन में, शुद्ध ज्ञान में, चारित्र में, सुकृत और दुष्कृतरूपी कर्मद्वंद्व के संन्यास काल में (अर्थात् प्रत्याख्यान में), संवर में और शुद्ध योग में (शुद्धोपयोग में) वह परमात्मा ही है... पूर्ण स्वरूप परमात्मा ही एक ही आश्रय है। आहाहा! है? (अर्थात् सम्यग्दर्शनादि सभी का आश्रय—अवलम्बन शुद्धात्मा ही है); मुक्ति की प्राप्ति के लिये जगत में अन्य कोई भी पदार्थ नहीं है, नहीं है।—ऐसा शब्द है। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थकर या पंच परमेष्ठी मुक्ति की प्राप्ति के लिये जगत में दूसरा कोई भी पदार्थ नहीं है। दो बार कहा है नहीं है, नहीं है। आहाहा! एक चैतन्य भगवान शुद्ध स्वभाव से भरपूर, उसके-एक के ही आश्रय के अतिरिक्त कोई मुक्ति का उपाय-धर्म नहीं है। धर्म की शुरुआत—सम्यग्दर्शन का आश्रय भी त्रिकाली आत्मा, केवलज्ञान का भी आश्रय त्रिकाली आत्मा। एक ही त्रिकाली आत्मा का आश्रय एक ही है, दूसरा नहीं, नहीं। दो बार कहा है। आहाहा! सब इसमें जरा आगे ले गये हैं। आहाहा! शुद्धोपयोग में एक ही है। उसके पहले भी दूसरे सब कलश लिये हैं। श्लोक है न। १७७ पृष्ठ। उसके पहले। सामने पहले पृष्ठ पर।

वही एक (वह चैतन्यज्योति ही एक) परम ज्ञान है... है? आहाहा! उसके पहले पेज पर। वही एक (वह चैतन्यज्योति ही एक) परम ज्ञान है, वही एक पवित्र दर्शन है, वही एक चारित्र है तथा वही एक निर्मल तप है। आहाहा! पश्चात भी कहा सत्पुरुषों को वही एक नमस्कारयोग्य है... गजब बात है। पंच परमेष्ठी भी नमस्कार करने के योग्य है, उसमें राग होता है। आहाहा! विकल्प है। सत्पुरुषों को वही एक नमस्कारयोग्य है, वही एक मंगल है,... अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, यह सब तो व्यवहार है। आहाहा!

जहाँ-तहाँ मांगलिक करते हैं न ? दुकान माँडे तो मांगलिक करे तो दुकान चले ।

मुमुक्षु : उसके कारण से चले ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा माने । वेविशाल करे वह ठीक चले, इसलिए मांगलिक करो । विवाह करे तो मांगलिक करो । गहने चढ़ाने जाए तो मांगलिक करो । आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि सत्पुरुष को वही एक नमस्कार करनेयोग्य है । यह क्या कहते हैं ? पंच परमेष्ठी को नमस्कार करनेयोग्य, वह विकल्प है । आहाहा ! १६ गाथा है न ? फिर पूरी बात कहेंगे । आहाहा ! सत्पुरुषों को वही एक नमस्कारयोग्य है, ... भगवान आत्मा । आहाहा ! वही एक मंगल है, वही एक उत्तम है तथा वही एक शरण है । आहाहा ! उसमें मांगलिक जो किया, वह अरिहन्ता मंगलं, सिद्धा मंगलं, ... केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं, वह सब व्यवहार है । वह तो विकल्प है । आहाहा ! भगवान आत्मा एक ही शरण है । यही यहाँ कहते हैं । चलता कलश ।

जन्म-मरणरूप रोग के हेतुभूत समस्त संग को छोड़कर, ... समस्त संग आया न ? कोई संग उसमें बाकी रहा ? आहाहा !

मुमुक्षु : स्वयं एक बाकी रहा ।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं तो... आहाहा ! लोगों को कठिन लगता है । सब तुझमें ही भरा है, बापू ! एक दृष्टि कर तो छलके ऐसा है । आहाहा ! ऐसा पूर्णानन्द से भरपूर प्रभु, तुझे दूसरा कोई शरण नहीं है । आहाहा ! दूसरे संग को छोड़कर... यहाँ तो यह कहा, देखो न ! दूसरे संग में तो भगवान आये या नहीं ? आहाहा !

मुमुक्षु : छह द्रव्यों में से कोई द्रव्य बाकी नहीं रहा ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई बाकी नहीं रहा । एक यह आ गया ।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर शुद्धोपयोग का कारण यह एक ही है । बाकी तो शुभ-अशुभराग का कारण है, वह तो बन्ध का कारण है । आहाहा ! लोगों को ऐसा सुनते हुए (ऐसा लगता है कि) सम्प्रदाय कैसे चले ? सम्प्रदाय चलाना है या तत्त्व करना है ? बापू ! आहाहा ! अरे ! सुनने को मिले ऐसा नहीं है । हरिभाई ! पहले यह करना । आहाहा !

जन्म-मरणरूप रोग के हेतुभूत समस्त संग... पर के संग से राग होगा । राग होगा

तो बन्धन होगा। आहाहा! हृदयकमल में... पर का संग छोड़कर अब हृदयकमल में बुद्धिपूर्वक पूर्णवैराग्यभाव करके,... आहाहा! बुद्धि अर्थात् समझपूर्वक, ज्ञानपूर्वक, विवेकपूर्वक भेदज्ञान करके... आहाहा! पूर्ण वैराग्यभाव कर। वैराग्य, वह भी पूर्ण। पर का संग भी पूर्ण छोड़ना और वैराग्य भी पूर्ण करना। आहाहा! ऐसी बात कहाँ है? लोग बेचारे सम्प्रदाय में पड़कर मरकर चार गति में भटकने जाएँगे। आहाहा!

यहाँ तो चैतन्यमूर्ति भगवान अनन्त चमत्कारिक गुण से भरपूर है, वह परमेश्वर है, प्रभु है। उसमें प्रभु नाम का एक गुण है कि जिससे अनन्त गुण को प्रभु बनाया है। आहाहा! ऐसा जो प्रभु का प्रभु स्वयं, उसके सन्मुख देखकर उपयोग कर; बाकी दूसरा छोड़ दे। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! इसमें तुम्हारे पैसा-बैसा और हीरा-फीरा तो कहीं रह गये, धूल। आहाहा! लाख दो लाख दान में दिये तो धर्म हो जाएगा। तीन काल में धर्म नहीं। लाख क्या, करोड़ दे न! शुभभाव है, संसार है। शुभभाव, वह संसार है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु!

मुमुक्षु : आप शुभभाव कहकर रुक जाओ तो दिक्कत नहीं। संसार मत कहो। शुभभाव को संसार नहीं कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार, संसार पूरा भटकेगा, बापू! आहाहा! अकेला मरे, अकेला जन्मे, अकेला जीवे। कोई सहायक नहीं। यह पहले आ गया। यह सब आजीविका के लिये ठगों की टोलियाँ तुझे मिली है, बापू! तुझे खबर नहीं। तुझे स्त्री प्रिय लगती है, पुत्र प्रिय लगता है। वह आजीविका के ठगों की टोलियाँ है। पहले आ गया है। आहाहा!

यहाँ तो समस्त संग में पंच परमेष्ठी का संग भी छोड़कर, यह असंग परमेश्वर है। यह पंच परमेश्वर तुझमें स्थित हैं। आहाहा! तू अरिहन्त है, तू सिद्ध है, तू आचार्य है, तू उपाध्याय, साधु तू है। आहाहा! अन्दर तेरे स्वभाव में पाँचों ही पद भरे हुए हैं। आहाहा! मात्र तेरी नजर वहाँ करने से पर्याय में आवे ऐसा है। बाकी कहीं दूसरा कोई उपाय नहीं है। दुनिया भले एकान्त कहे। है नय का विषय एकान्त ही, सम्यक् नय का विषय एकान्त ही है। आहाहा!

बुद्धिपूर्वक पूर्णवैराग्यभाव... देखा! पूर्ण वैराग्य अर्थात् पर की ओर से बिल्कुल उदास। आहाहा! पंच परमेष्ठी की ओर से भी परम उदास, परद्रव्य की ओर से उदास, स्वद्रव्य की ओर रहने में तत्पर। आहाहा! अरे! अभी ऐसा सुना नहीं होगा और जैन कहलाते हो। हम स्थानकवासी हैं और मन्दिरमार्गी हैं, हम दिगम्बर हैं। बापू! कब था? जैन

किसे कहना, यह अभी तूने सुना नहीं और इसके बिना चौरासी के अवतार, यहाँ से मरकर जाएगा कहीं। आहाहा! बहुत तो सुअर और कौआ और कुत्ता होनेवाले हैं। अरे! चैतन्य प्रभु का आदर नहीं किया और उसके अतिरिक्त पर का आदर किया वह तो संसार है। शुभराग, वह भी घोर संसार है। आहाहा! दुनिया को पसन्द आवे, न आवे, ऐसा कठिन पड़े...

यहाँ यह कहते हैं, **पूर्णवैराग्यभाव करके, सहज परमानन्द द्वारा...** आहाहा! अन्तर भगवान सहज आनन्द परमानन्द भरा है। प्रभु! तुझमें विकल्प का दुःखमात्र नहीं। विकल्प उठा, वह तो दुःख है। निर्विकल्प तत्त्व अन्दर **सहज परमानन्द द्वारा जो अव्यग्र (अनाकुल) है...** आहाहा! स्वाभाविक परमानन्द द्वारा भगवान आत्मा अव्याकुल है। आहाहा! अनाकुल है। कोई व्याकुलता नहीं, उसे अन्दर कोई आकुलता है नहीं। आहाहा! बाहर की बड़ी पंचायत लेकर बैठा। आहाहा!

यह तो कहते हैं **सहज परमानन्द द्वारा...** स्वाभाविक परमानन्द का धनी प्रभु **जो अव्यग्र (अनाकुल) है, ऐसे निज रूप में...** आहाहा! सन्तों के एक-एक शब्द गजब काम करते हैं! दिगम्बर मुनियों की बात (अर्थात्) परमेश्वर के घर की बात। परमेश्वर तीन लोक के नाथ के मुख से (निकली हुई) दिव्यध्वनि, वह सन्तों की दिव्यध्वनि है। बाकी सब जपजाल है परन्तु जँचे कैसे? जिसमें पड़ा है, उसमें से छूटना / निकलना कठिन पड़ता है। आहाहा! भाई चले गये? ठीक! क्या कहा?

सहज परमानन्द द्वारा जो अव्यग्र (अनाकुल) है... कौन? ऐसा निजरूप। आहाहा! यह निजरूप अन्दर भगवान... आहाहा! स्वाभाविक परमानन्द द्वारा जो अव्यग्र अर्थात् अनाकुल, स्वाभाविक ऐसे निजरूप में (अपनी) शक्ति से... आहाहा! सामर्थ्य से, बल, वीर्य, पुरुषार्थ से। स्थित रहकर,... अपने पुरुषार्थ से स्थित रहकर। किसी की मदद बिना। ब्रजनाराचसंहनन मिले और मनुष्यपना होवे तो ही केवल (ज्ञान) हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! कुचामन का एक पण्डित आया था। वह कहे कि मनुष्यपने बिना नहीं मिलता। सुन, बापू! मनुष्यपने बिना क्या? ब्रजनाराचसंहनन की उसे आवश्यकता नहीं है। वह तो पूरा-पूरा भगवान स्वतन्त्र भरा है।

‘नजर के आलस्य से रे तूने नैनों निरख्या न हरि।’ तेरी नजर के आलस्य से हरि को नहीं देखा। हरि अर्थात् आत्मा। पंचाध्यायी में आत्मा को हरि कहा है। पंचाध्यायी।

हरते इति हरि। राग और द्वेष तथा अज्ञान को हरे, ऐसा भगवान, वह हरि है—ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! अपने स्वरूप में स्थिर हो, वह हरि। अब ऐसी बातें! उसमें लोग बहुत इकट्ठे हों। आहाहा! क्या करते हैं, कहते हैं यह? वीतराग का ऐसा मार्ग है। उसमें दिगम्बर सन्तों की वाणी तो तीन लोक के नाथ परमात्मा के मुख से निकली हुई वाणी है। कठिन पड़े परन्तु बापू! मार्ग तो यह है, प्रभु! आहाहा!

क्या कहा? निज परमानन्द द्वारा... आहाहा! निज रूप में (अपनी) शक्ति से स्थित रहकर, मोह क्षीण होने पर,... आहाहा! एक कलश में तो गजब काम करते हैं। मोह क्षीण होने पर, हम लोक को सदा तृणवत् देखते हैं। पूरी दुनिया, इन्द्र के राज सड़े हुए तृण जैसा देखते हैं, कहते हैं। प्रभु के अनाकुल आनन्द के समक्ष, अनाकुल आनन्द की अन्तर्दृष्टि के समक्ष, उसकी प्राप्ति हुई, उसके समक्ष सम्पूर्ण इन्द्र के इन्द्रासन तृणवत् देखते हैं, कहते हैं। आहाहा! अभी तो पैसेवाले का बोलवाला। पैसा अधिक खर्च करे—दस लाख, पाँच लाख,... आहाहा! गजब भाई! अब उसमें धूल में क्या पाँच—दस लाख में? आहाहा! बड़ी रकम दे, उसकी कीमत अधिक। वह संघ में बड़ा कहलाये। यहाँ कहते हैं कि आत्मा में अन्दर स्थिर हो, वह बड़ा कहलाये। आहाहा! वह स्थिर हो, वह शुभ-अशुभराग भी नहीं। आहाहा! हीरालालजी! ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

प्रभु विराजता है न अन्दर, कहते हैं। आहाहा! परमात्मा साक्षात् अन्दर विराजता है। आहाहा! उसे छोड़कर—मोह क्षीण करके हम लोक को सदा... आहाहा! लोक शब्द में बाकी क्या रहा? आहा! इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तृण जैसे हैं, बापू! आहाहा! लोक को सदा तृणवत्... तृण, तृण, छिलका। आहाहा! तृणवत् देखते हैं। प्रभु को अवलोकन करते हुए जगत को तृणवत् अवलोकन करते हैं, ऐसा कहते हैं। इस प्रकार दो की तुलना करने पर (ऐसा है)। प्रभु पूर्णानन्द के नाथ का उपयोग जहाँ अन्दर करने पर... आहाहा! पूरी दुनिया तृणवत् दिखाती है। आहाहा! उस ज्ञान में स्व-पर ज्ञात हो, इस अपेक्षा से। बाकी तो स्वयं ही अन्दर पूर्ण ज्ञात होता है। आहाहा! लो! यह २६९ कलश (पूरा) हुआ। आहाहा! अब इसमें वाद-विवाद करके साथ करना?

मुमुक्षु : इसमें इनकार किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तेरे उपयोग के अतिरिक्त कोई तुझे कुछ लाभदायक नहीं है। भगवान तीन लोक के नाथ भी तुझे लाभदायक नहीं हैं। बात आवे,

गुरु उपदेश द्वारा (प्राप्त होता है), यह देशनालब्धि की बात आवे, तथापि उससे प्राप्त होता है—ऐसा नहीं है। देशनालब्धि आती है परन्तु, गुरु के उपदेश से, गुरु के प्रसाद से, गुरु की मेहरबानी से ऐसे शब्द भी आते हैं। उसका अर्थ यह है कि जो परम पवित्र परमात्मा को प्राप्त हुए हैं, उनकी वाणी तुझे निमित्त होगी। निमित्त होने का अर्थ ? उससे होता नहीं है। तुझे तुझसे होगा, तब उसे निमित्त कहा जाएगा। आहाहा! अब फिर ऐसा (सुनकर) सोनगढ़ में कौन आवे ? और आवे तो उसे कठिन लगे। ऐसा कहते हैं ? आहाहा! अन्यत्र कहाँ है ? भाई! कहीं नहीं है।

मुमुक्षु : इसका पेट बहुत बिगड़ा है तो कठोर रेच होवे तो अच्छा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठोर रेच तो यह है। आहाहा!

तेरे चैतन्य के उपयोग के अतिरिक्त किसी संग से तुझे धर्म का लाभ हो, ऐसा वीतरागमार्ग में है नहीं। आहाहा! पश्चात् चाहे जितने कथन आवें, वाणी आवे, व्यवहार के लेख आवें... आहाहा! तू तो अनन्त गुण से भरपूर भगवन्त परमेश्वस्वरूप, वह परमेश्वर दूसरे की शरण ले, यह पामरता उसे नहीं होती, प्रभु! आहाहा! उस प्रभु को दूसरे की पामरता की आवश्यकता नहीं होती। आहाहा!

यहाँ तो **समस्त संग को छोड़कर,...** हम पूरे लोक को सदा तृणवत् अवलोकन करते हैं। लोक को सदा। लोक में बाकी कौन रह गया ? आहाहा! प्रभु के अतिरिक्त मुझे तो कहीं दूसरी चीज़ में रुचि नहीं होती, इसलिए तृणवत् गिनते हैं, कहते हैं। आहाहा! भाषा तो भाषा मुनियों की! मुनि हैं, हों! यह आचार्य नहीं। पद्मप्रभमलधारिदेव (आचार्य नहीं)। आहाहा! **हम लोक को...** हमारे अतिरिक्त लोक को... आहाहा! **सदा तृणवत् देखते हैं।** आहाहा! मुनियों की भाषा जगत को कठिन पड़े ऐसी है।

मुमुक्षु : यह दूसरे को तृणवत् गिने, इसमें अभिमान नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तृणवत् गिने, इसमें आत्मा का अभिमान है। अहंपना मैं परमात्मा हूँ, मेरी पूर्णता के लिये मुझे किसी की अपेक्षा नहीं है। मेरी पूर्णता के लिये मुझे किसी की सहायता नहीं है ऐसा उस स्वरूप की प्रतीति और अनुभव का जोर है। आहाहा! ऐसा है। कठिन लगे। आहाहा! पहले भी आया था। तृणवत् देखते हैं। कहीं आया अवश्य था। **लोक को सदा तृणवत् देखते हैं।**

गाथा-१५८

सर्वे पुराणपुरिसा एवं आवासयं च काऊण ।
 अपमत्तपहुदिठाणं पडिवज्ज य केवली जादा ॥१५८॥
 सर्वे पुराण-पुरुषा एव-मावश्यकं च कृत्वा ।
 अप्रमत्तप्रभृतिस्थानं प्रतिपद्य च केवलिनो जाताः ॥१५८॥

परमावश्यकधिकारोपसंहारोपन्यासोऽयम् । स्वात्माश्रयनिश्चयधर्मशुक्लध्यानस्वरूपं बाह्यावश्यकदिक्रियाप्रतिपक्षशुद्धनिश्चयपरमावश्यकं साक्षादपुनर्भववाराङ्गनानङ्गसुखकारणं कृत्वा सर्वे पुराणपुरुषस्तीर्थकरपरमदेवादयः स्वयम्बुद्धाः केचिद् बोधितबुद्धाश्चाप्रमत्तादि-सयोगिभट्टारकगुणस्थानपङ्क्तिमारूढाः सन्तः केवलिनः सकलप्रत्यक्षज्ञानधराः परमावश्यक-त्माराधनाप्रसादात् जाताश्चेति ।

यों सर्व पौराणिक पुरुष आवश्यकों की विधि धरी ।
 पाकर अरे अप्रमत्त स्थान हुए नियत प्रभु केवली ॥१५८॥

अन्वयार्थ : [सर्वे] सर्व [पुराणपुरुषाः] पुराण पुरुष [एवम्] इस प्रकार [आवश्यकं च] आवश्यक [कृत्वा] करके, [अप्रमत्तप्रभृतिस्थानं] अप्रमत्तादि स्थान को [प्रतिपद्य च] प्राप्त करके [केवलिनः जाताः] केवली हुए ।

टीका : यह, परमावश्यक अधिकार के उपसंहार का कथन है ।

स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान और निश्चयशुक्लध्यानस्वरूप ऐसा जो बाह्य-आवश्यकदिक्रिया से प्रतिपक्ष शुद्धनिश्चय-परमावश्यक—साक्षात् अपुनर्भवरूपी (मुक्तिरूपी) स्त्री के अनंग (अशरीरी) सुख का कारण—उसे करके, सर्व पुराण पुरुष—कि जिनमें से तीर्थकर-परमदेव आदि स्वयंबुद्ध हुए और कुछ बोधितबुद्ध हुए वे—अप्रमत्त से लेकर सयोगीभट्टारक तक के गुणस्थानों की पंक्ति में आरूढ होते हुए, परमावश्यकरूप आत्माराधना के प्रसाद से केवली—सकलप्रत्यक्षज्ञानधारी—हुए ।

गाथा - १५८ पर प्रवचन

अब १५८ गाथा। आवश्यक (अधिकार) की यह अन्तिम गाथा।

सर्वे पुराणपुरिसा एवं आवासयं च काऊण।

अपमत्तपहुदिठाणं पडिवज्ज य केवली जादा ॥१५८॥

आहाहा! पंचम काल के सन्त हैं परन्तु ठेठ केवली की बातें करते हैं। केवली... केवली... केवली... आहाहा! नीचे (हरिगीत)

यों सर्व पौराणिक पुरुष आवश्यकों की विधि धरी।

पाकर अरे अप्रमत्त स्थान हुए नियत प्रभु केवली ॥१५८॥

आहाहा! ऐसा आवश्यक करके। आहाहा! आवश्यक-अवश्य का अपना आत्मा का उपयोग करना, वही अवश्य एक ही आवश्यक है। आहाहा! एकान्त लगे। नयाभास जैसा कहते हैं। व्यवहार नहीं साथ में? भाई! व्यवहार है। यह कहते हैं, वह व्यवहार है, पर्याय स्वयं व्यवहार है। त्रिकाली द्रव्य निश्चय है और पर्याय प्रगट हो केवलज्ञान, वह स्वयं व्यवहार है। आहाहा! परन्तु वह भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय आदरणीय नहीं है। आहाहा! आदरणीय तो तीन लोक का नाथ एक केवलज्ञान की पर्याय में, एक ज्ञान की पर्याय में अनन्त गुण की पर्याय भरी है। ऐसे-ऐसे अनन्त गुण अनन्त पर्याय से भरपूर ऐसे अनन्त गुणों का एकरूप प्रभु का... आहाहा! उसे छोड़कर किसका आश्रय लेना? किसकी शरण? किसी की शरण है नहीं। आहाहा! अरिहन्ता शरणं कहा, वह व्यवहार कहा। वह विकल्प है, राग है। आत्मशरण। यह आ गया। नहीं कहा? १००वीं गाथा। आत्मा शरण, आत्मा मंगल, आत्मा उत्तम और आत्मा नमस्कार करनेयोग्य। दूसरे को नमस्कार करने योग्य भी नहीं। अर.र.र..! ऐसी भाषा! पंच परमेष्ठी को भी नमस्कार करनेयोग्य में भी शुभविकल्प है, राग है। आहाहा! कहो, हीरालालजी! ऐसा कहाँ है? कहीं सुना था? ऐसा मार्ग प्रभु का है, भाई! तुझमें क्या कमी है? कहीं कमी है? आहाहा!

मुमुक्षु : तू सब बातें पूरा है, किस बातें अधूरा?

पूज्य गुरुदेवश्री : 'प्रभु मेरे सर्व बातें पूरा, प्रभु मेरे सर्व बातें पूरा' भजन में आता

है। आहाहा! 'पर की आस कहाँ करे प्रीतम, पर की आस कहाँ करे प्रीतम किस बातें तू अधूरा?' आहाहा! 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा।' आहाहा! आता है या नहीं? 'पर की आस कहाँ करे प्रीतम' हे प्रिय! नाथ! पर की आशा प्रभु! तू क्या करता है? भाई! किस बात में तू अधूरा है कि पर की आशा करता है? आहाहा! एक उड़द की दाल अच्छी हो, वहाँ प्रसन्न हो, उसे ऐसा कहना कि ऐसा प्रभु तू है। पूरी दुनिया तेरे हिसाब से तृणवत् है, भाई! आहाहा! वहाँ तो एक चूरमा का लड्डू और उड़द की दाल और पतरवेलिया-अरबी के पान के, अरबी के पत्ते के पतले और ऐसे मोटे होते हैं। आटा डालकर टुकड़े करके घी में तले हों और वह पतरवेलिया और चूरमा और उड़द की दाल खाये। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा खा-खाकर तो बहुत मर गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : खाये परन्तु वह धूल है। प्रभु अमृत का सागर, वह धूल खाये? वह धूल खाता नहीं कभी। चूरमा कभी आत्मा ने खाया नहीं। मात्र उस ओर का लक्ष्य करके राग करके राग को खाया है। आहाहा! ऐसी बात! यह आत्मा दूसरे आत्मा को या दूसरे जड़ को कभी स्पर्श नहीं करता। आहाहा! यह तीसरी गाथा में कहा है। एक आत्मा अपने धर्म को चुम्बन करता है, दूसरे के धर्म को, दूसरे द्रव्य को चुम्बन नहीं करता। यह समयसार की तीसरी गाथा है। आहाहा! एक यह सिद्धान्त और एक क्रमबद्ध सिद्धान्त। गजब बात। हो गया। यह क्रमबद्ध का निर्णय करे, उसे ज्ञायक पर नजर जानी चाहिए। आहाहा! ऐसा अन्दर भरपूर ज्ञायक भगवान, पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण परमेश्वर... आहाहा! कैसे जँचे? सुनने को मिले नहीं, उसे कैसे जँचे? भटकने की बातें मिले। आहाहा! यह करो.. यह करो.. यह करो.. व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो। देखो न, यह मोरबी में वह हो गया, उसका कुछ करते हैं। शान्ति विधान। आहाहा! भ्रमणा का पार है! जैन में रहे होने पर भी... शान्ति विधान तो यहाँ है या वहाँ है? आहाहा! यहाँ १५८।

टीका : यह, परमावश्यक अधिकार के उपसंहार का कथन है। परम आवश्यक, परम अवश्य का, परम अवश्य का। आवश्यकता जिसकी जाने, उसका वीर्य स्फुरित हुए बिना रहता ही नहीं। ऐसा परमावश्यक, ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके अधिकार की यह अन्तिम गाथा है। आहाहा! दुनिया से तो मर जाए एक बार, पाटनीजी! तब जीव को जीवित माने। नहीं तो जीव को मार डाला है। उसकी अपेक्षा दूसरी किसी चीज़ को कुछ

भी अधिक विशेष, महिमावाली, महत्तावाली माना, उसने आत्मा को मार डाला है। आहाहा!

मुमुक्षु : कलश टीका में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न, आता है। जीव को मार डाला है। कलश में कहा, मरणतुल्य कर डाला। जीव को मरणतुल्य कर डाला। मैं दया पालन करूँ, व्रत करूँ, यह मुझे लाभ होगा। मार डाला तूने आत्मा को, भाई! यह सब राग की क्रिया को तूने धर्म माना। आहाहा! वह मरणतुल्य कर डाला। कलश टीका में है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की वाणी में कहे हुए भाव बिना दूसरा कोई उपाय नहीं होता। दूसरा कोई छूटने का उपाय नहीं मिलता। आहाहा!

यह, परमावश्यक... परम जरूर का, उत्कृष्ट जरूर का, यही जरूर का। आहाहा! ऐसे अधिकार के उपसंहार का कथन है। **स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान...** आहाहा! **स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान...** परमात्मा के आश्रय से भी राग (होता है)। आहाहा! **स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान...** भगवान पूर्णानन्द का नाथ कैसे जँचे? बाहर में साधारण चीज़ जहाँ लड़का जरा अच्छा हुआ हो, वहाँ रस-रस (आ जाता है)। मानो रसगुल्ला खाता हो, ऐसा इसे रस लगता है। स्त्री कुछ ठीक मिली हो, वहाँ तो ओहोहो! अपने को मानो इन्द्राणी मिली और अपने को ओहोहो! अरे! प्रभु! पूरी दुनिया तेरे समक्ष तृणवत् है। प्रभु! तेरी कीमत की जा सके, ऐसी चीज़ नहीं है। तुझे किसी की उपमा दी जा सके, ऐसी (कोई चीज़) नहीं है। आहाहा! यह स्व-आत्मा, देखा! पहला शब्द। आहाहा! वहाँ कहाँ था? मुम्बई में ऐसा सब था? पूरे दिन हीरा की होली थी। हीरा की होली।

मुमुक्षु : इसलिए तो यहाँ आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सच्ची है। आहाहा!

पहले क्या लिया? **स्वात्माश्रित...** महा शब्द लिया। अपना आत्मा स्व-अपना आत्मा। उसके आश्रित। धर्मध्यान उसके आश्रित होता है। आहाहा! पंच परमेष्ठी के आश्रय से भी धर्मध्यान नहीं होता। आहाहा! अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सच्चे साधु। अभी तो कहाँ एक भी सच्चे हैं? आहाहा! इसलिए लोगों को कठिन पड़े न, बापू! सत्य की बात है, प्रभु! सत्य की बात से तुझे लाभ का कारण है, भाई! सत्य से तेरा

अनादर नहीं है। ऐसा नहीं मानना कि अरे! हमें साधु नहीं मानते। बापू! साधुपना वह क्या चीज़ है अभी तूने... आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है... आहाहा! तीन लोक का नाथ आत्मा परम स्वाश्रित, स्वाश्रित दर्शन, इसके अतिरिक्त दर्शन का कोई उपाय नहीं। सम्यग्दर्शन का उपाय स्वाश्रित। आहाहा!

वह स्वाश्रित निश्चयधर्मध्यान... आहाहा! सच्चा धर्मध्यान, ऐसा कहा। वैसे तो धर्मध्यान को सब मानते हैं। व्रत करे, अपवास करे, रात्रिभोजन न करे, छह परबी हरितकाय न खावे, छह परबी कन्दमूल न खाये। धर्म मान बैठे वह बात अलग। रात्रिभोजन का तो त्याग ही होना चाहिए, कन्दमूल का त्याग होना चाहिए, परस्त्री का त्याग होना चाहिए। यह तो पहले में पहला नैतिक जीवन का एकड़ा है। क्या कहा? कन्दमूल का त्याग, परस्त्री का त्याग, रात्रिभोजन का त्याग। रात्रिभोजन में, बापू! उस दीपक में जीव पड़ते हैं। वह माँस का खुराक (कहलाता है)। आहाहा! यह खुराक जैन को नहीं होता। आहाहा! यह तो स्वयं ने अनुभव की हुई बात है। (संवत्) १९६४ के वर्ष की बात है। यह माल लेने गये थे और आते हुए शाम पड़ गयी। तब तक रात्रिभोजन छोड़ा नहीं था। किया तो बैठे ऐसे। दीपक और खिचड़ी तथा कढ़ी निकाली। आता है उसमें बारीक जीव दिखायी नहीं देते। ऐसे खिचड़ी-कढ़ी, बारीक जीवांत पड़ती हो। वह खाना, वह माँस खाने के बराबर है। कहा। (संवत्) १९६४ का वर्ष।

मुमुक्षु : आप भोजन करने बैठे थे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भोजन करने बैठे थे। माल लेने गये थे। शाम पड़ गयी थी। रात्रि में खाने बैठे... आहाहा! अरे रे! यह होवे नहीं, बापू! जैन को रात्रिभोजन नहीं होता। चाहे जैसी बड़ी ऐसी बातें करे परन्तु इससे कहीं रात्रिभोजन का त्याग होता है। वह महापाप है, वह पाप तो जैन को होता ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : दिन उगने से पहले चाय तो पी जाए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। चाय भी नहीं पी जाए और कुछ भी नहीं पी जाए। दिन उगने से पहले। उस चाय में कब जीव कैसे पड़े, ऐसे छोटे जीव अन्धेरे में गिरें। कहीं जल्दी जाना हो, इसलिए वह रात्रि में जल्दी पी जाए। इस बात का अपने को तो १९६४ के वर्ष का अनुभव है। १९६४, ६४, कहा, ऐसे जीव गिरें, वह खुराक अपन अब नहीं

लेंगे। १९६४ के वर्ष से आजीवन का रात्रिभोजन का त्याग है और अथाणा। वह खाने बैठे और बहिन अथाणा लेने गयी। मैं देखने गया, बहिन अथाणा लायी कहाँ से? हम एक रसोई में तीस व्यक्ति थे। दो दुकानों और सब शामिल था। इसलिए मैं अकेला माल देरी से लेकर आया था, इसलिए खाने बैठे। बरनी में से अथाणा (अचार) ले आये। बरनी होती है न? वह क्या कहलाता है वह? बरणी। गोदड़ा भरा हो और नीचे खाली। वहाँ पड़ी हुई। मैं वहाँ देखने गया, वहाँ कन्थवा। मैला कपड़ा ढाँका हुआ था। क्या कहलाता है वह? तुम्हारे नाम भी नहीं आते। ढाँका हो न? ढक्कन और उसके ऊपर काला कपड़ा। इसलिए हाथ सब मैले हुए हों। काम करते हों। कन्थवा। लेने जाए वहाँ कन्थवा अन्दर पड़े। अरे! यह खुराक! जैन को यह खुराक नहीं होता। आहाहा! कहाँ एक ओर बात परमात्मा की, कहाँ एक ओर बात यह। भाई गये? यह बैठे। आहाहा! यह सब बात कहाँ से निकली?

यह स्वात्माश्रित... एक स्व आत्मा के आश्रय के अतिरिक्त कहीं धर्म नहीं है। आहाहा! रात्रि में खाता हो और सामायिक करके बैठा हो, हम सामायिक करते हैं। सामायिक कहाँ थी तेरी? अभी मिथ्यात्व की विपरीतता (पड़ी है), मिथ्यादृष्टि है। सब पूरा धर्म ही मिथ्यात्व का। स्थानकवासी और श्वेताम्बर दोनों धर्म मिथ्यादृष्टि का है। वे दोनों जैन नहीं हैं। आहाहा! ऐसी बात, हरिभाई! ऐसा कहा जाता होगा? बापू! सत्य तो ऐसा है। हित की बात तो ऐसी है, प्रभु! तेरा आत्मा ही ऐसा हित का पुंज है। आहाहा! तुझमें कुछ कमी नहीं, अधूरा नहीं। आहाहा!

स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान... देखो! एक ही सिद्धान्त लिया। धर्मध्यान निश्चय स्वाश्रित ही होता है। आहाहा! मन से नहीं, वाणी से नहीं, देह से नहीं, पुण्य से नहीं। देव, गुरु और शास्त्र से नहीं। इन सेठियों ने तो ऐसा सुना भी नहीं होगा। वहाँ लाडनूँ में कहाँ था ऐसा?

मुमुक्षु : लाडनूँ में तो क्या पूरे संसार में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बहुत सत्य बात है। ऐसी बात है, बापू! ओहोहो! क्या हो? अरे रे! प्राणी अपनी चीज को भूलकर भटकते हैं। वे दुःखी हैं, महादुःखी हैं, उन्हें भान नहीं है। पागल है, पागल हो गया है। आहाहा!

स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान... यह आवश्यक। यह परमावश्यक, यह अवश्य का। स्वात्माश्रित निश्चय... अर्थात् सच्चा धर्मध्यान... आहाहा! आत्मा कौन है, इसकी खबर बिना धर्मध्यान कहाँ से आया? बापू! प्रभु! जिन्दगी पूरी हो जाएगी। देह चली जाएगी। यह आत्मा कहीं जाएगा, अन्यत्र अवतरित होगा। बापू! वहाँ कोई शरणभूत साथ में नहीं है। आहाहा! स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान... यह महासिद्धान्त है। जिसे धर्म करना हो तो यह निश्चय जो आत्मा त्रिकाली, परमात्मा का रूप जिसका, परमात्मा ही स्वयं है, शक्ति और स्वभावरूप से परमात्मा ही है। प्रगट पर्याय में करने के लिये उसे मानना कि मैं परमात्मा हूँ। आहाहा! ऐसा जो स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान... आहाहा! इतने शब्द में तो कितना भरा है! स्व आत्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं और वह निश्चयधर्मध्यान। व्यवहारधर्मध्यान भी नहीं। आहाहा!

स्वात्माश्रित (कहा), तब आत्मा कौन है, यह पहले जानना पड़ेगा न? स्वात्माश्रित कहा, तो आत्मा कौन है? कितना है? कैसे है? यह कोई जानना पड़ेगा न? आत्मा जाने बिना ऐसे का ऐसे तुम्हारे धर्म हो जाएगा? आहाहा! उस स्व आत्मा को जानना पड़ेगा। जानकर आश्रय लेना पड़ेगा। जाने बिना किसका आश्रय ले? जो चीज़ जानी नहीं, उसका आश्रय किस प्रकार लेगा? आहाहा! आचार्यों ने गजब काम किया है। यह टीका करनेवाले तो मुनि हैं और मूल गाथाएँ तो कुन्दकुन्दाचार्य की हैं।

स्वात्माश्रित... स्व आत्मा कौन है, उसे जानना पड़ेगा। पहले में पहला जानने का यह है। कहो, हरिभाई! पहला क्या? स्व आत्मा। यह पहले बताया था न? भाई! १७वीं गाथा। समयसार की १७वीं गाथा। पहले में पहले आत्मा जानना। १७वीं गाथा। आहाहा! वहाँ देव-गुरु को जानना और छह काय को जानना और छह द्रव्य को जानना, वनस्पति की दया को जानना पहले, ऐसा कुछ कहा नहीं। आहाहा! पहला आत्मा। यहाँ भी यह कहा। स्वात्माश्रित... यह आत्मा है कौन कि जिसका आश्रय लेकर निश्चय सच्चा धर्मध्यान हो? ऐसा यहाँ मुनि पुकारते हैं। आहाहा!

और निश्चयशुक्लध्यानस्वरूप... स्व के आश्रय से ही धर्मध्यान और निश्चय - शुक्लध्यान (होता है)। और शुक्लध्यान के लिये संहनन, ब्रजनाराचसंहनन होवे और मनुष्यपना होवे और देव-गुरु-शास्त्र की मदद होवे तो शुक्लध्यान होता है, ऐसा नहीं है।

आहाहा! ऐसा काम है। स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान... कोई कहे कि भाई! यह तो आगे जाने पर होता है तो फिर कुछ आश्रय लेना पड़े न? पहले से ही स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान और निश्चयशुक्लध्यान... यह स्वात्म आश्रय से है। आहाहा! सब पैसे-फैसेवाले पैसे दें, इसलिए धर्म हो जाए, इसकी यहाँ तो शून्य लगाते हैं। रतिभाई! आहाहा! यह लाख रुपये दिये थे इन्होंने, नहीं? भावनगर। इनके भाई ने दिये थे। वह भी देता ही है न! आहाहा! कौन दे? कौन ले? आहाहा! यह क्रिया तो उस काल में उसकी होनी हो, वह होती है। आहाहा!

प्रभु! तू स्व का आश्रय ले न! दूसरी बात छोड़ दे। ऐसा भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थकरों की ऐसी दिव्यध्वनि है। आहाहा! महाविदेह के तीर्थकर, भरत के तीर्थकर और ऐरावत के तीर्थकर... आहाहा! उन अनन्त तीर्थकरों की यह एक आवाज है। स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान और स्वात्माश्रित निश्चयशुक्लध्यान। आहाहा! इसके अतिरिक्त धर्मध्यान और शुक्लध्यान है नहीं। लेकर बैठे, व्रत लेना, प्रौषध किये और प्रतिक्रमण किये, मुँह पर बाँधकर सामायिक की। धूल भी कुछ नहीं। सब मिथ्यात्व का पोषण है। मिथ्यात्व में अनन्त संसार बढ़ता जाता है। ऐसी क्रिया में धर्म मानने में तो अनन्त संसार बढ़ता जाता है। आहाहा! भारी कठिन काम।

बेचारा दुकान छोड़कर उपाश्रय में सामायिक करने जाए। सामायिक मानी है, वह सामायिक नहीं, उसे सामायिक मानना, वह मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व अनन्त संसार बढ़ाता है। अरे रे! ऐसी बातें! देखो! यह दिगम्बर सन्तों की वाणी है। आहाहा! दिगम्बर के अतिरिक्त कहीं है नहीं। दिगम्बर मुनि और दिगम्बर तीर्थकर... आहाहा! इनके अतिरिक्त ऐसा सत्य तीन लोक में कहीं-कहीं अन्यत्र नहीं है। आहाहा! महाविदेह में है परन्तु इसके अतिरिक्त दूसरे में कहीं नहीं है। भगवान विराजते हैं, वहाँ यह है। आहाहा!

ऐसा जो बाह्य-आवश्यककादि क्रिया से प्रतिपक्ष... जो आत्मा के आश्रय से आवश्यक क्रिया, जो धर्मध्यान है, वह बाह्य आवश्यक क्रिया, बाह्य के छह आवश्यक, सामायिक, चौविसंथो, वन्दना, प्रतिक्रमण, यह सब विरुद्ध है। इस अन्दर की क्रिया से सब विरुद्ध क्रिया है। है? आहाहा! स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान और निश्चयशुक्लध्यान -स्वरूप ऐसा जो बाह्य-आवश्यककादि... आवश्यककादि में सब लिया। जितना क्रियाकाण्ड

करो... आहाहा ! आवश्यक तो है ही नहीं । विकल्प उठे, यह सामायिक की, मैंने प्रतिक्रमण किया, मैंने भगवान की चौविसंथो... यह तो नहीं परन्तु आवश्याकादि सभी क्रियाएँ, बाह्य जितनी क्रियाएँ कहलाती है... आहाहा ! उस क्रिया से प्रतिपक्ष / विरुद्ध । अब यहाँ तो निश्चय से व्यवहार विरुद्ध है । शुद्धनिश्चय-परमावश्यक—साक्षात् अपुनर्भवरूपी... आहाहा ! यह विशेष बात है ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)